International Journal of Applied Research 2018; 4(11): 281-285

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(11): 281-285
www.allresearchjournal.com
Received: 03-09-2018
Accepted: 06-10-2018

डॉ० सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'
सहायक प्राध्यापक,
म०म०ठा० मिथिला महाविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य की भक्ति की शैली

डॉ० सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'

सारांश:
भगवत्प्राप्ति का एकभाव भक्ति साधना है। भक्ति साधना का रहस्य सबके लिए सुपरिचित नहीं है। श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति हरस्य अद्भूत है। भक्ति को तीन भागों में बाँट कर शैली को समझा जा सकता है। प्रथम– प्रवर्तक शैली द्वितीय साधक शैली और तृतीय सिद्ध शैली। पवर्तक शैली में प्रथम साधना है नाम साधना से प्रायः भक्त परिचित हैं। वाचक शब्द और वाच्य अर्थ में जिस प्रकार नित्य सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार नाम और नामो में नित्य सम्बन्ध विद्यमान रहता है। इसी शैली को श्रीमद्भागवत महापुराण श्रीमद्भागवत गीता आदि में विस्तार से वर्णन किया गया है। महर्षि वाल्मिकी, महर्षि वेदव्यास दोनों की भक्ति शैली भिन्न–भिन्न प्रकार की है।

कूटशब्द: भक्ति साधना, श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीमद्भागवत गीता

प्रस्तावना

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सेवा करना या भजना है अर्थात् श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इष्ट देवता के प्रति आसक्ति। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक भक्ति दिखाई पड़ता है। जिसके अनन्त महत्व का हम श्रवण करते हैं जो हमारा वास्तविक सम्बन्धी होता है जिसके द्वारा हमारा हित सम्पादित होता है एवं शाश्वत शान्ति तथा अनन्त सुख का लाभ होता है, उसमें विवेक की अविचल प्रीति स्वभावतः हो हीं जाती है। इसलिये भगवत्प्रार्थना के शैली के रूप में अथर्वसंहिता में कहा गया है–

देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे । तस्य नो रास्व तस्य
नो धोहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम्।।(1)

हे अभ्युदय एवं निःश्रेयसप्रदाता देव! तु आध्यात्मिकादि असंख्य शाश्वत पुष्टियों का स्वामी है, इसलिए हमें उन पुष्टियों का तु दान कर, उनका हमारे में स्थापन कर जिससे उस महान अनन्तपुष्टिपति प्रभु की भक्ति से हम युक्त हों अर्थात् तेरी पावन भक्ति के द्वारा हीं हमें अभिष्ट पुष्टियों का लाभ होगा ऐसा विश्वास हम करें।

Corresponding Author:
डॉ० सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'
सहायक प्राध्यापक,
म०म०ठा० मिथिला महाविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

जिसके साथ हमारा कोई न कोई सम्बन्ध होता है उसे देखकर या उसका नाम सुनकर उसके प्रति स्नेह का प्रादुर्भाव हो हीं जाता है।
संसार के माता-पिता आदि सम्बन्धी के प्रति भी होता है। परन्तु सर्वेश्वर परमात्मा के प्रति जीवात्माओं का शास्वत प्रेम अमरता है। अतएव वेदों में परमात्मा के साथ प्रीति करने को कहने की शैली हर प्रकार है।

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्।(2)

अर्थात् हे तारणहार अभिप्राय यह है कि संसार के दुख से तारने वाले भगवान् तु हमारा त्राता रक्षक है। इसलिये तु चेत्य अर्थात् जानने योग्य है।
तु हमारा कौन? तु हम मनुष्यों का सदा रहने वाला सच्चा माता-पिता है। इसलिए हे भगवान् तू हमारा है और हम तेरे हैं यह भाव भगवच्छरणागति का भी है।

त्वमस्माकं तव स्मसि(3)

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापि मग्नि भ्रातरं सदमित् सखायम्।(4)

अर्थात् परमात्मा रूपी अग्नि को ही सदैव अपना पिता मानता हूँ अग्नि को हीं मैं अपना बन्धु मानता हूँ एवं अग्नि को ही भाई तथा सखा मानता हूँ अग्नि, इन्द्र, वरुण, रुद्र आदि के रूप में एक परमात्मा का ही वर्णन किया गया है।
यह जीव अनादिकाल से संसार के कल्पित नाम रूपों में आसक्त होकर विविध प्रकार के दुखों को भोग रहा है। अत: इस दुख जनक आसक्ति से छूटने के लिए हमारे स्वतः प्रमाण वेदों में हैं। विषस्यौषधं विषम्, कण्टकस्य निवृत्ति: कण्टकेन
श्री भगवान् के पावन मधुरतम मंगलमय नामों की एवं दिव्यतम साकार रूपों की भक्ति शैली उपदेश दिया है।

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे(5)

हे अनन्त ज्ञाननिधि भगवान्। आपके पावन नामोंका परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी इन चार वाणियों के द्वारा भक्ति के साथ हम उच्चारण करते रहते हैं।

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।(6)

अमर्त्य अविनाशी आप भगवान् के महिमाशाली नाम का हम श्रद्धा के साथ जप एवं संकीर्तन करते हैं। अन्यान्य समस्त प्रिय पदार्थों के मध्य में एकमात्र तु ही परमप्रिय पतिदेव है, यह मानकर हम सब-भक्तजन तुझे ही पुकारते हैं एवं तुम्हारी कामना करते हुए आराधना करते हैं। यह आर्त्तशैली है।

प्रियाणां त्वां प्रियपति | हवामहे।(7)

जिस ज्ञान के समय समस्त प्राणी एक आत्मा हीं हो जाते हैं अर्थात् नाम-रूपात्मक- आरोपित जगत का अधिष्ठान आत्मा में बंध जाता है, केवल आत्मा ही परिशिष्ट रह जाता है, ऐसे विज्ञानवाले एवं सर्वत्र एक आत्मभाव का ही अनुदर्शन करनेवाले को उस समय मोह क्या, शोक क्या? अर्थात् अहं-आत्मज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होने पर अज्ञान के शक्ति-द्वयरूप आवरणात्मक मोह एवं विक्षेपात्मक शोक की भी सुतरां निवृत्ति हो जाती है

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाद्यूद् विजानत:।
तत्र को मोह: कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥(8)

ज्ञानवान भक्त की यही एक भक्ति शैली है, वह उस एक को ही सर्वत्र देखता है और तदन्यभाव का बाध करके उस एक में हीं वह तन्मय बना रहता है। वह एक अपना अभिन्न स्वरूप आत्मा ही है। अतएव जो यथार्थ में ज्ञानवान है, वह भक्तिशून्य भी नहीं रह सकता और जो सच्चा भक्त है वह अज्ञानी भी नहीं हो सकता। ज्ञानी के हृदय में अनन्य भक्ति की निर्मल मधुर गङ्गा प्रवाहित रहती है तथा भक्त का हृदय अद्वय-ज्ञान के विमल प्रकाश से देदीप्यमान रहता है। इस प्रकार ज्ञान एवं भक्ति का सामञ्जस्य ही साधक को कल्याण के शिखर पर पहुंचा देता है।
भगवान् भक्तों के अभय करनेवाले हैं वे सर्वत्र सब रुप में हैं, उन्हें कहीं आना–जाना नहीं है। इसलिए वे वसुदेव जी के मन में अपनी समस्त कलाओं के साथ प्रकट होकर अभय प्रदान करते हैं शरणागतवत्सल भक्ति की शैली का उदाहरण है।

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्कर:
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभे:।।(9)

श्रीमद्भागवत् गीता में भगवान् की अनन्य भक्ति शैली है अर्थात् परमात्मा सब जगह है सब समय में हैं, सम्पूर्ण वस्तुओं में हैं सम्पूर्ण क्रियाओं में हैं और सम्पूर्ण प्राणियों में है। जैसे सोने से बने हुए गहनों में पहले भी सोना हीं था और गहना रूप बनने पर भी सोना हीं रहा और गहनों के नष्ट होने पर भी सोना हीं रहेगा। परन्तु सोने से बने, गहनों के नाम, रूप, आकृति, उपयोग, तौल मूल्य आदि पर दृष्टि रहने से सोने की तरफ दृष्टि नहीं जाती। ऐसे ही संसार के पहले भी परमात्मा थे, संसाररूप से भी परमात्मा हीं हैं और संसार का अन्त होने पर भी परमात्मा हीं रहेगें। परमात्मा के शिवाय किसी की भी सत्ता और महत्ता नहीं माने तथा भगवान् के नाते भगवान् की प्रसन्नता के लिए प्रत्येक क्रिया करे, तो यह उसकी अनन्य भक्ति शैली है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्"(10)

वास्तव में भक्त के लिए भगवान् हीं सब कुछ हैं भगवान् का ही रूप सब कुछ है परन्तु जो भगवान् के सिवाय दूसरी कोई भी स्वतंत्र सत्ता मानता है उसका भक्ति सिद्ध नहीं होता। भक्त अपने भगवान् के साथ एकता मानकर ही जीव अपने को भोक्ता और मालिक मानने लग जाता है भगवान् मालिक है जीव भोक्ता है इसे स्मरण कराते हुए गीता में कहते है कि जो भक्त मुझे पत्र, पुष्प, फल आदि जो कुछ भी पदार्थ मुझे अर्पण कर देता है तो उसमें एकात्म भाव आ जाता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयातात्मनः।।(11)

भगवान् का जब भक्त के साथ सामञ्जस्य बनता है तो भक्ति करता है। भक्ति करने से ज्ञान और वैराज्ञ की प्राप्ति होती है। श्रीपद्मपुराण के उत्तर खण्ड में श्रीमद्भागवत् महात्म्य में भक्ति को महारानी कहा गया है और ज्ञान वैराग्य उसके पुत्र हैं। भक्ति महारानी भक्तों के हृदय पर राज करती हैं।

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।(12)

भक्ति ज्ञान वैराग्य की स्थापना के लिए प्रकाशित श्रीमद्भागवत महापुराण जो वेदों के समान कहा गया है।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम्।।(13)

श्रीमद्भागवत महापुराण की भक्ति शैली में भगवान् सर्वशक्तिमान भक्त के वशीभूत होकर बाललीला करते हुए व्रजवासियों को आनन्द प्रदान करते हैं

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः।।(14)

मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म भक्ति है जिस भक्ति से भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं भक्ति से आत्मशुद्धि हो जाती है। भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना नहीं हो और नित्य निरंतर भक्ति बनी रहे ऐसी ही भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है। भगवान् कृष्ण में भक्ति होते हीं अनन्य प्रेम से उनमें चित जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य का आविर्भाव हो जाता है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहेतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्।।(15)

क्षम्यभक्ति शैली में भक्त के द्वारा किये गये अपराध भी क्षमा योग्य हो जाता है। महर्षि वाल्मिकी ने रामायण में श्रीराम के वनगमन प्रसंग में अयोध्या काण्ड में जब सुमन्त्र को लौटाते हुए समझाया तो सुमन्त्र ने स्नेहपूर्वक श्री राम से बोले कि हे तात! सेवक का स्वामी के प्रति जो सत्कारपूर्ण वर्ताव होना चाहिये उसका यदि मैं आपसे बात करते समय पालन न कर सकूँ, यदि मेरे मुख से स्नेहवश कोई धृष्टतापूर्ण बात निकल जाये तो यह मेरा भक्त है, ऐसा समझकर आप मुझे क्षमा कीजियेगा। जो आपके वियोग से पुत्रशोक से आतुर हुई माता की भाँति संतप्त हो रही है, उस अयोध्यापुरी में मैं आपको साथ लिये बिना कैसे लौटकर जा सकूँगा?

यदहं नोपचारेण ब्रूयां स्नेहादविक्लवम्।
भक्तिमानिति तत् तावद् वाक्यं त्वं क्षन्तुमर्हसि॥

कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम्।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव।।(16)

इसी प्रसङ्ग में भक्ति रखने वालों को परित्याग नहीं करना चाहिये कहते हैं।

भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि।
भक्तं भृत्यं स्थित्या न मा त्वं हातुमर्हसि।।(17)

हे भक्तवत्सल! आप मेरे स्वामी के पुत्र हैं आप जिस पथ पर चल रहे हैं उसी पर आपकी सेवा के लिए साथ चलने के लिए भी तैयार खड़ा हूँ। मैं आपके प्रति भक्ति रखता हूँ आपका भृत्य हूँ और भृत्यजनोचित मार्यादा के भीतर स्थित हूँ अतः आप मेरा परित्याग न करें। इस तरह अनेक प्रकार से दीन वचन कहकर बार-बार याचना करनेवाले सुमन्त्र से सेवकों पर कृपा करने वाले श्री राम ने उत्कृष्ट भक्ति शैली की बात कही। श्रीराम ने कहा कि हे सुमन्त्र जी आप स्वामी के प्रति स्नेह रखने वाले हैं मुझमे आपकी जो उत्कृष्ट भक्ति है उसे मैं जानता हूँ।

जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल।
श्रृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमित:।।(18)

एक अन्य उदाहरण में भक्ति की शैली का अद्भूत भाव जहाँ माता देवहूति अपने पुत्र नारायण के अवतार कपिल से पूछती है कि हे पुत्र विषय–लालसा से उब गयी हूँ इस देह गेह आदि में मै और मेरेपन का दुराग्रह होता है इस मोह को दूर कीजिये क्योंकि भक्तों के लिए भगवान् संसाररूप वृक्ष के लिए कुठार के समान होते हैं।
मैं प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके शरणागत वत्सल की शरण में आयी हूँ। आप भागवत धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं अतएव पुत्ररूप में भी आपको प्रणाम करती हूँ।
तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरो: कुठारम्।
जिज्ञासयाहं प्रकृते: पुरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम्॥"(19)
भगवान् कपिल कहते हैं कि योगियों के लिए भगवत्प्राप्ति के निमित्त सर्वात्मा श्रीहरि के प्रति की हुई भक्ति के समान और कोई मंगलमय मार्ग नहीं है। विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं किन्तु वही संग या आसक्ति जब संतों महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है।

न युज्यमानया भक्त्याभगवत्य खिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये।।
प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एवं साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्।।(20)

श्रीमद्भागवतगीता के अनुसार मुक्ति से बढ़कर भक्ति है। भगवान् कहते हैं–

ब्रऽमभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।(21)

ज्ञानयोग से जिस साधक में भक्ति के संस्कार होते हैं जो अपने मत का आग्रह नहीं रखता, मुक्ति अर्थात् संसार से सम्बन्ध-विच्छेद को ही सर्वोपरि मानता है और भक्ति का खण्डन, निन्दा नहीं करता उसको मुक्ति में संतोष नहीं होता है। अत: उसको मुक्ति प्राप्त होने के बाद भक्ति की प्राप्ति हो जाती है ।
मुक्ति से भक्ति प्राप्त करने की शैली गीता की है। जहाँ ज्ञानयोग कर्मयोग के बाद भक्तियोग का वर्णन किया गया है।

संदर्भ:

1. अर्थवसंहिता– 6/79/3
2. ऋग्वेद– 6/1/5
3. ऋग्वेद– 8/92/32
4. ऋग्वेद– 10/7/3
5. अर्थर्ववेद– 20/19/3
6. ऋग्वेद– 8/11/5
7. शुक्ल यजुर्वेद– 23/19
8. शुक्ल यजुर्वेद– 40/7
9. श्रीमद्भागवतमहापुराण– 10/2/16
10. श्रीमद्भागवत गीता 8/22
11. श्रीमद्भागवत गीता 9/26
12. पद्मपुराण उत्तरखण्ड श्रीमद्भागवत महात्म्य 1/45
13. पद्मपुराण उत्तरखण्ड श्रीमद्भागवत महात्म्य 2/71
14. श्रीमद्भागवतमहापुराण– 10/11/9
15. श्रीमद्भागवत महापुराण 1/2/6,7

16. श्रीमद्वा ल्मीकीय रामायण अयोध्या का० 52/38,39
17. श्रीमद्वा ल्मीकीय रामायण अयोध्या का० 52/58
18. श्रीमद्वा ल्मीकीय रामायण अयोध्या का० 52/60
19. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/25/11
20. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/25/19-20
21. श्रीमद्भागवत महापुराण 18/54